हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र

डाइवर्सिटी

(मार्क्सवादियों से एक संवाद)

एच.एल दुसाध

हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी

(मार्क्सवादियों से एक संवाद)

हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी

(मार्क्सवादियों से एक संवाद)

एच. एल. दुसाध

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

प्रथम संस्करण : 2005
द्वितीय संस्करण : 2021

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1,149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, सम्पर्क : 011-26125973, 9654816191
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

© **लेखक**

मूल्य : 150.00 रुपये

रचना : हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचित की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी
लेखक : एच. एल. दुसाध
शब्दांकन : कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
आवरण : राकेश यादव
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, दिल्ली-110094

मार्क्सवादी आंदोलन की दुनिया के विरल व्यक्तित्व
कॉमरेड प्रभुलाल जी को जिनके
ज्ञान, त्याग और मानवता के प्रति प्रेम
मुझे अपनी तुच्छता का अहसास कराते रहता है।

अनुक्रम

भूमिका 9

नए संस्करण के अवसर पर पर अपनी बात! 17

वामपंथी सरकारों ने डाइवर्सिटी लागू करने में नहीं ली रूचि–17, हिन्दू साम्राज्यवाद के वजूद को इंकार करते : वामपंथी–18, वर्ण-व्यवस्था में प्रवाहमान होता रहा : हिन्दू साम्राज्यवाद–19, वर्ण-व्यवस्था में ही क्रियाशील रहा : भारत में वर्ग-संघर्ष–19, आधुनिक भारत में मंडल से शुरू हुआ : वर्ग संघर्ष–21, हिन्दू साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में नहीं चलेगा : रशिया और चाइना मॉडल–22, वर्तमान हालात में हिन्दू साम्राज्यवाद के शोषितों का मॉडल देश : दक्षिण अफ्रीका–23, भारत और दक्षिण अफ्रीका में कितनी समानता!–23, अब आज़ादी का सुख भोग रहे हैं : दक्षिण अफ्रीकी मूलनिवासी–24, मूलनिवासी कालों को मिला सर्वव्यापी आरक्षण!–25, मुमकिन है : बहुजनो की तानाशाही सत्ता!–26, विश्व इतिहास मे वंचितों की इतनी विशालतम आबादी कहीं भी नहीं–27, क्रांति में घी का काम करती : सापेक्षिक वंचना!–27, बहुजनों में पनप रही है : हम-भावना!–28, बहुजनवादी नेतृत्व की व्यर्थता के चलते : वाम दलों के समक्ष स्वर्णिम अवसर–28

लेखकीय : 'डाइवर्सिटी' के मुद्दे पर इतनी जल्दी यह किताब क्यों? 33

हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी 53

भूमंडलीकरण के दौर में मार्क्सवाद के विस्तार संभावना और डाइवर्सिटी–55, जाति समस्या पर उदासीन : वामपंथी–56, भूमंडलीकरण के दौर में दलित-पिछड़ा और अल्पसंख्यकों का रक्षा कवच: डाइवर्सिटी–57, आसान नहीं है हिंदी पट्टी की राह–58, वर्ण-व्यवस्था : धंधों की वितरण-व्यवस्था–59, कर्म संकरता की निषेधाज्ञा पर विकसित; हिन्दू साम्राज्यवाद–61, वर्ण-व्यवस्था के निर्माण के पीछे उपनिवेशवादी मानसिकता–64, वामपंथियों द्वारा हिन्दू साम्राज्यवाद की अनदेखी–66, जाति-व्यवस्था ने तैयार की मुस्लिम साम्राज्यवाद

की बुनियाद–69, प्लासी से शुरू हुआ हिंदू साम्राज्यवाद के खिलाफ सशस्त्र संग्राम–71, वर्ण-व्यवस्था के वितरणवादी स्वरूप पर आईपीसी का हमला–73, आरक्षण से शुरू हुई सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया–75, हिंदू साम्राज्यवाद के लिए नवसाम्राज्यवाद का स्वागत–78, विदेशी कंपनियों को रोकने के लिए: डाइवर्सिटी–80, आर्थिक वैषम्य को पाटने के लिए : डाइवर्सिटी–82, लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी–84, गुलामों की अस्तित्व रक्षा के लिए: डाइवर्सिटी–86, तीसरी गुलामी के जिम्मेवार–90, दलित नव-साम्राज्य नहीं, हिन्दू साम्राज्य के ध्वंस के आग्रही–92, साम्राज्यवादियों द्वारा छोड़े गये जूठन पर हिस्सेदारी का सवाल!–94, अस्पृश्यता का प्रतिकार करने के लिए : डाइवर्सिटी–95, इक्कीसवीं सदी का दलित एजेंडा–98, भोपाल घोषणा का असर–98, भोपाल दस्तावेज : 21वीं सदी के लिए दलितों के भविष्य निर्माण की नई रणनीति–100, भोपाल दस्तावेज : दलित एजेंडा–101, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और विविधता–101, विविधता का अमेरिका अनुभव–101, विविधता का वक्तव्य–106, हारवर्ड विश्वविद्यालय–107, डॉ. मार्टिन-हारवर्ड चिकित्सा स्कूल के डीन–107, अमेरिकी मीडिया–109, बी.एन. उनियाल–109, रचनात्मक कलाओं में विविधता–111, एम.बी.सी.–112, ए.बी.सी.–112, सी.बी.एस.–112, फॉक्स–113, सूचना प्रौद्योगिकी में विविधता–113, आई. बी.एम.–114, अमेरिका का निजी क्षेत्र प्रवीणता को कैसे देखता है?–115, माइक्रोसॉफ्ट–115, विविधता के संबंध में माइक्रोसॉफ्ट–115, पूंजी बाजार और विविधता–117, 21 सूत्रीय एजेंडा–119, दलित करोड़पति बनने की शुरूआत का बीजारोपड़–122, डाइवर्सिटी कांग्रेस तथा एजेण्डा नहीं–125, बिना सरकारी अनुदान के उद्यमी बन सकते हैं : दलित–126, डाइवर्सिटी में लिए बाधक: वामपन्थी नेतृत्व–128, सर्ववर्ग की चेतना की कसौटी पर द्विज समाज–128, साम्यवादी पार्टी के जन्मकाल से ब्राह्ममण वर्चस्व–129, डॉ. आंबेडकर कार्ल मार्क्स के भक्त–130, मार्क्सवाद ब्राह्मण वर्ग के विरुद्ध!–131, ब्राह्मण मार्क्सवादी क्यों बने?–133, मार्क्सवादी बनने के लिए ब्राह्मणों की चाल–136, अतिवादी, हिंदूमार्क्सवादी : नक्सलवादी–137, सर्वहारा नेतृत्व के लिए अनुपयुक्त : ब्राह्मण–139

भूमिका

–डॉ. सिद्धार्थ रामू

भारतीय समाज की आंतरिक बनावट और बुनावट का अध्ययन करने वाला कोई भी पूर्वाग्रह मुक्त अध्येता इस तथ्य से इंकार नहीं कर सकता है, वर्ण-जाति व्यवस्था भारतीय समाज की रीढ़ है और भारतीय समाज की पतनशील स्थिति की मूल वजह है। जिसे एच.एल. दुसाध ने हिंदू साम्राज्यवाद नाम दिया है। भारतीय राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज व्यवस्था और संस्कृति-साहित्य के पोर-पोर में वर्ण-जाति व्यवस्था का प्रवेश है। बहुलांश भारतीयों के मनोविज्ञान का केंद्रीय तत्व जाति है। यही हिंदू साम्राज्यवाद का आधार है। लोहिया के शब्दों में कहे तो भारतीय आदमी का दिमाग जाति और योनि के कटघरे में कैद है। डॉ. आंबेडकर से शब्द उधार लेकर कहें तो जाति ने भारतीयों को दिमागी तौर पर बीमार बना दिया है। यह सिर्फ अतीत का सच नहीं, भारतीय समाज का वर्तमान भी जाति से ही संचालित हो रहा है। जिसे हम भारतीय पूंजीवाद कहते हैं, उसका भी मुख्य संचालक तत्व जाति है। वर्ण-जाति व्यवस्था जैसा शोषण-उत्पीड़न इतना मुकम्मल ढ़ांचा दुनिया में कहीं नहीं खड़ा किया जा सका। इसी ढ़ांचे पर आधारित शोषण-उत्पीड़न पर मध्यकालीन सम्राटों-नवाबों और राजाओं-महराजाओं की शानो-शौकत और भोग-विलास का महल टिका हुआ था। इसी ढांचे का इस्तेमाल करके ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता ने करीब तीन सौ वर्षों तक भारत में अपना साम्राज्य कायम रखा। आजाद भारत की एक के बाद एक आने वाली सरकारों ने भी इसका भरपूर इस्तेमाल किया और वर्ण-जाति के ढांचे को बुनियादी तौर पर बनाए रखा। इस सब को एच.एल. दुसाध ने एक शब्द में हिंदू साम्राज्यवाद कहा है, जिससे मुक्ति का संघर्ष बहुजन समाज लड़ रहा है। इस संघर्ष को एच.एल. दुसाध अपने डाइवर्सिटी के सिद्धांत से एक नया आयाम देते हैं।

वर्ण-जाति व्यवस्था सिर्फ भारतीय इतिहास पर काला धब्बा नहीं, यह वर्तमान का जीता-जागता सच है। वर्ण-जाति व्यवस्था का पहला पद वर्ण है। यह वर्गीय विभाजन के स्वरूप को उजागर करता है, ऊपर के तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्चस्वशाली शोषक-उत्पीड़कर वर्ग रहे हैं और बहुलांश समाज से बना चौथा वर्ण (शूद्र) मेहनतकश किसानों, शिल्पकारों और सेवक जातियों का रहा और अन्य को वर्ण-जाति व्यवस्था के रचनाकारों ने सामाजिक व्यवस्था से बाहर कर 'अछूत' घोषित कर दिया, जिन्हें अतिशूद्र या अन्त्यज कहते हैं। जिनको आज दलित समुदाय के रूप में जाना जाता है।

ऊपर के तीन वर्ण परजीवी रहे हैं, जो शूद्रों-अतिशूद्रों (पिछड़े-दलितों) के श्रम के शोषण पर पलते रहे हैं। यही तीनों हिंदू साम्राज्यवादी हैं। शीर्ष स्तर पर राजनीतिक उथल-पुथल होती रही और शासक बदलते रहे हैं, लेकिन श्रम के दोहन का वर्ण-जातिवादी ढांचा थोड़े-बहुत रूपगत परिवर्तनों के साथ जस का तस बना रहा। वर्ण विभाजन जहां साफ-साफ वर्गीय विभाजन सा दिखाता है, वहीं जातीय विभाजन ने वर्गों को भी विभाजित किया। सबसे अधिक जातीय विभाजन मेहनतकश शूद्र वर्ण (पिछड़ा वर्ग) में हुआ, जिसने उन्हें एक वर्ग के रूप में संगठित ही नहीं होने दिया और इसके चलते मुट्टीभर परजीवी द्विज वर्ग बहुसंख्यक शूद्रों (पिछड़ा वर्ग) और अतिशूद्रों पर शासन करते रहे। इस स्थिति का व्यवस्थित एवं मार्मिक चित्रण जोतीराव फुले ने अपनी किताब 'गुलामगिरी' में किया है। इसी स्थिति को रेखांकित करने के लिए डॉ. आंबेडकर ने कहा कि जाति सिर्फ श्रम विभाजन की व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह श्रमिकों के विभाजन की व्यवस्था भी है। महिलाओं को ब्राह्मणवादी शास्त्रों ने शूद्रों में ही डाल दिया और उन्हें भी उन सभी अधिकारों से वंचित कर दिया गया है, जिनसे शूद्र वर्ण वंचित था। इस स्थिति का वर्णन एच.एल. दुसाध अपने तरीके करते हैं और उसके समाधान व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तुत करते हैं, जो उपाय उन्होंने अपनी किताबों और इस किताब में प्रस्तुत किया है, उस बहस हो सकती है, संवाद हो सकता है, असहमतियां भी हो सकती है, लेकिन उसकी महत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता है।

वर्ण-जाति व्यवस्था सिर्फ सामाजिक व्यवस्था नहीं रही है, यह आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था भी थी। वर्ण-जाति व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य उच्च जातियों की आर्थिक हितों की रक्षा करना और उनकी उच्च सामाजिक हैसियत बनाए रखा था। इस तथ्य को रेखांकित करने के लिए डॉ. आंबेडकर ने लिखा कि "बाह्मणवादी व्यवस्था द्वारा जातियों के लिए कानूनी एवं नैतिक संहिता बनाने

का उद्देश्य उच्च जातियों की आर्थिक हितों की रक्षा करना और उनकी उनकी ऊंची सामाजिक हैसियत बनाए रखना है।" वर्ण-जाति व्यवस्था उच्च जातियों के आर्थिक हितों की रक्षा करती रही और उनकी ऊंची सामाजिक हैसियत बनाए रखी।

आठवीं-नवीं शताब्दी में वर्ण-जाति व्यवस्था ने भारत में एक मुकम्मल शक्ल अख्तियार कर लिया। इसके पहले ब्राह्मणवाद और गैर-ब्राह्मणवाद के बीच तीखा संघर्ष चल रहा था, जिसकी अंतिम परिणति बौद्ध धम्म और अन्य बहुजन श्रमण परंराओं की पराजय के रूप में हुई, जिसका विस्तार से वर्णन डॉ. आंबेडकर ने अपनी किताब 'प्राचीन भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति' में किया है। हालांकि अन्य विविध रूपों में बहुजन-श्रमण परंपरा बनी रही, लेकिन जमीन के मुकम्मल बंटवारे और शंकराचार्य के नेतृत्व में ब्राह्मणवादी वैचारिक विजय ने भारत में उच्च जातियों के वर्चस्व को काफी मजबूत बना दिया। शीर्ष-स्तर पर राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन होते रहे, लेकिन भारतीय समाज की बुनियादी ईकाई गांवों में उच्च जातियों का आर्थिक एवं सामाजिक वर्चस्व कायम रहा। चाहे सल्तनतकाल रहा हो, या मुगलकाल रहा हो, ब्रिटिशकाल रहा हो या आजादी के बाद का भारत रहा हो : गांवों, विशेषकर आर्यावर्त के गांवों में गोदान के पंडित दातादीन, झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी लाल और सहुआई के वर्चस्व को निर्णायक तरीके से तोड़ा नहीं जा सका। आज भी भारतीय समाज में आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण और सामाजिक हैसियत वर्ण-जाति व्यवस्था के आधार पर ही है और काफी हद राजनीति और प्रशासन पर भी उच्च जातियों का नियंत्रण है। इसका विस्तार से वर्णन अपनी किताबों में दुसाध जी करते हैं। इसे निम्न तथ्यों के आलोक में देख सकते हैं–

आइए तथ्यों की रोशनी में वर्ण-जाति आधारित असमानता के श्रेणीक्रम को देखते हैं। सबसे पहले देश की संसद को लेते हैं। संसद देश का सर्वोच्च निकाय ही नहीं, सबसे ताकतवर संस्था है, क्योंकि उसे ही संविधान में संसोधन करने एवं कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। यह जनता के प्रतिनिधियों की सर्वोच्च निकाय है, जिस जनता में भारत की संप्रभुता निहित है। देखते हैं इसमें किसका कितना प्रतिनिधित्व है। वर्तमान लोकसभा (2019) में चुनकर आए कुल 543 सांसदों में 120 ओबीसी, 86 अनुसूचित जाति और 52 अनुसूचित जनजाति के हैं और हिंदू सवर्ण जाति से जीतकर आए सांसदों की संख्या 232 है। आनुपातिक तौर देखें, तो ओबीसी का लोकसभा में अनुपात 22.09 प्रतिशत है, जबकि मंडल कमीशन और अन्य आंकड़ों के अनुसार आबादी में इनका अनुपात 52 प्रतिशत

है। आबादी में करीब 21 प्रतिशत के बीच हिस्सेदारी रखने वाले सवर्णों का लोकसभा में प्रतिनिधित्व उनकी आबादी करीब दो गुना 42.7 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को उनकी आबादी के अनुपात से थोड़ा अधिक ही लोकसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। आखिर 52 प्रतिशत ओबीसी को अपने आबादी के अनुपात से आधे से भी कम और सवर्णों को उनकी आबादी से दो गुना प्रतिनिधित्व क्यों मिला हुआ है। इसका सीधा कारण है, भारतीय समाज में उच्च जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और कुछ अन्य) का वर्ण-जाति आधारित वर्चस्व। एससी-एसटी को उनकी आबादी के अनुपात में लोकसभा में इसलिए प्रतिनिधित्व मिला हुआ है, क्योंकि उनके लिए आबादी के अनुपात में आरक्षण है। इस बात की पूरी संभावना है कि यदि एससी-एसटी के लिए आरक्षण नहीं होता,तो उनका लोकसभा में प्रतिनिधित्व ओबीसी से भी बहुत कम होता और ओबीसी के लिए उनकी आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व नहीं, क्योंकि उन्हें आबादी के अनुपात में लोकसभा में आरक्षण प्राप्त नहीं है।

इसे नौकरशाही के संदर्भ में देखते हैं। भले ही संसद विधान बनाती हो,लेकिन नौकरशाही नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन के मामले में सबसे निर्णायक संस्था है। उसमें विभिन्न मंत्रालयों के सचिव से सबसे निर्णायक होते हैं। 2019 में पीएमओ साहित केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में में कुल 89 शीर्ष आईएएस अधिकारियों (सचिवों) में एक भी ओबीसी समुदाय से नहीं था और इनमें केवल एक एससी और 3 एसटी समुदाय के थे। क्योंकि इन पदों पर कोई आरक्षण का प्रावधान नहीं है। अब जरा विस्तार से केंद्रीय नौकरशाही को देखते हैं। 1 जनवरी 2016 को केंद्रीय कार्मिक मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी आंकड़े बताते हैं कि ग्रुप-ए के कुल पदों 84 हजार 521 में से 57 हजार 202 सामान्य वर्गों (उच्च जातियों) का कब्जा था यानि कुल नौकरियों के 66.67 प्रतिशत पर 21 प्रतिशत सवर्णों का नियंत्रण था। इसमें सबसे बदत्तर स्थिति 52 प्रतिशत आबादी वाले ओबीसी की थी। इस वर्ग के पास ग्रुप-ए के सिर्फ 13.1 प्रतिशत पद थे यानि आबादी सिर्फ एक तिहाई, जबकि उच्च जातियों के पास आबादी से ढाई गुना पद थे। कमोवेश यही स्थिति ग्रुप-बी पदों के संदर्भ में भी थी। ग्रुप बी के कुल पदों के 61 प्रतिशत दों पर सवर्ण काबिज थे।

यही स्थिति विश्वविद्यालयों-महाविद्यालयों के शिक्षक पदों पर थी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की वार्षिक रिपोर्ट (2016-17) के अनुसार 30 केंद्रीय विश्वविद्यालय 82 राज्यों के विश्वविद्यालय (सरकारी) में प्रोफेसरों के कुल 31 हजार 446 पदों

में सिर्फ 9 हजार 130 पदों पर ही ओबीसी,एससी-एसटी के शिक्षक है यानि सिर्फ 29.03 प्रतिशत। यहां 52 प्रतिशत ओबीसी की हिस्सेदारी बहुत ही कम है।

अब जरा कुछ उन निर्णायक पदों को देखते, जहां किसी समुदाय के लिए कोई आरक्षण नहीं। ऐसा ही एक पद विश्वविद्यलय के कुलपतियों का है। उच्च शिक्षा व्यवस्था में कुलपति सबसे निर्णायक होता है, विशेषकर नियुक्ति एवं पदोन्नति के मामले में। 5 जनवरी 2018 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा दी गई सूचना के अनुसार देश के (उस समय के) 496 कुलपतियों में 6 एससी, 6 एसटी और 36 ओबीसी समुदाय के थे। यानि उच्च जातियों के 90.33 प्रतिशत और ओबीसी 7.23 प्रतिशत, एसी 1.2 प्रतिशत और एसटी 1. 2 प्रतिशत। यहां ओबीसी को अपनी आबादी का करीब आठवां हिस्सा प्राप्त है और एससी-एसटी को न्यूनतम से न्यूनतम, क्योंकि उनके लिए भी यहां आरक्षण का प्रावधान नहीं है। इसके पहले हम केंद्र सरकार के 89 सचिवों में एक के भी ओबीसी ने होने के तथ्य को देख चुके हैं, क्योंकि वहां भी आरक्षण नहीं है।

ओबीसी समुदाय के सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ेपन के बहुत सारे अन्य तथ्य उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय संपदा में हिस्सेदारी के मामले में देखें तो पाते हैं कि (2013 के आंकड़े) देखें तो पाते हैं कि कुल संपदा में ओबीसी की हिस्सेदारी सिर्फ 31 प्रतिशत है, जबकि उच्च जातियों की हिस्सदारी 45 प्रतिशत है, दलितों की हिस्सेदारी अत्यन्त कम सिर्फ 7 प्रतिशत है, क्योंकि वे वर्ण-जाति के श्रेणीक्रम में सबसे नीचे हैं। कुल भूसंपदा का 41 प्रतिशत उच्च जातियों के पास है, ओबीसी का हिस्सा 35 प्रतिशत है और एससी के पास 7 प्रतिशत है। भवन संपदा का 53 प्रतिश सवर्णों के पास है, ओबीसी के पास 23 प्रतिशत और एसीसी के पास 7 प्रतिशत है। वित्तीय संपदा (शेयर और डिपाजिट) का 48 प्रतिशत उच्च जातियों के पास है, ओबीसी के पास 26 प्रतिशत और एससी के पास 8 प्रतिशत। भारत में प्रति परिवार औसत 15 लाख रूपया है, लेकिन सवर्ण परिवारों के संदर्भ में यह औसत 29 लाख रूपया है, ओबीसी के संदर्भ में 13 लाख और एससी के संदर्भ में 6 लाख रूपया है यानि उच्च जातियों की प्रति परिवार औसत संपदा ओबीसी से दो गुना से अधिक है। (सुखदेव थोराट)

एक नजर भारतीय समाज की सोच के नियंत्रित करने वाली मीडिया पर डालते हैं। गैर-सरकारी संगठन ऑक्सफैम व न्यूजलॉन्ड्री नामक मीडिया संस्थान ने एक 2018 में सर्वे जारी किया। इसके मुताबिक मीडिया के सभी स्वरूपों चाहे वे अखबार हों या न्यूज चौनल या फिर ऑनलाइन न्यूज पोर्टल : सभी में वंचितों

की हिस्सेदारी नगण्य है।"हू टेल्स अवर स्टोरीज़ मैटर्स : रिप्रेजेंटेशन ऑफ मार्जिनलाइज़्ड कास्ट ग्रुप्स इन इंडियन न्यूज़रूम्स" नाम की यह रिपोर्ट बताती है कि भारतीय मीडिया के तमाम न्यूज़रुम वंचितों की आवाज़ से वंचित हैं। यानि यहां काम करने वाले अधिकतर लोग सवर्ण हैं जिनके अपने सरोकार हैं। अपने अध्ययन में ऑक्सफैम-न्यूजलॉन्ड्री ने पाया है कि भारतीय मीडिया में अनुसूचित जनजाति के लोग नज़र ही नहीं आते, जबकि अनुसूचित जातियों के लोगों का प्रतिनिधित्व भी बतौर पत्रकार न के बराबर है।

अपनी इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए ऑक्सफैम इंडिया और न्यूज़लॉन्ड्री ने अंग्रेज़ी के 6 और हिंदी के 7 अख़बारों का अध्ययन किया। इसके अलावा डिजिटल मीडिया से जुड़े 11 संस्थानों, 12 समाचार पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से ब्यौरा जुटाया। साथ ही अंग्रेज़ी के 7 और हिंदी के 7 प्रमुख टीवी चैनलों पर प्रसारित कार्यक्रमों में शामिल होने वाले रिपोर्टर, लेखक और पैनलिस्टों का ब्यौरा जुटाया। इसके बाद जो नतीजे सामने आए वे चौंकाने वाले थे।

रिपोर्ट के मुताबिक़ सर्वेक्षण में शामिल सभी समाचार पत्र, पत्रिका, टीवी चैनल और वेबसाइट के न्यूज़रूम में निर्णायक पदों पर यानि मुख्य संपादक, प्रबंध संपादक और ब्यूरो प्रमुख जैसी कुर्सियों पर सवर्ण क़ाबिज़ हैं। अध्ययन में पाया गया कि कुल 121 निर्णायक पदों में से 106 पर उच्च जाति के पत्रकारों का क़ब्ज़ा है जबकि इनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का एक भी सदस्य नहीं है। राज्यसभा टीवी, आज तक, न्यूज़ 18, इंडिया टीवी, एनडीटीवी इंडिया, रिपब्लिक भारत, और ज़ी न्यूज में सभी निर्णायक पदों पर उच्च जाति के लोग क़ाबिज़ हैं।

यह रिपोर्ट कहती है कि प्रतिनिधित्व देने के मामले में पत्रिकाओं में बाक़ी संस्थानों यानि टीवी, अख़बार और वेबसाइटों से हालात थोड़े बेहतर हैं। हिंदी की इंडिया टुडे और आउटलुक के अलावा अंग्रेज़ी की बिज़नेस टुडे, फेमिना, फ्रंटलाइन, इंडिया टुडे, द कैरवैन (कारवां), आर्गनाइज़र, आउटलुक, स्पोर्ट्सस्टार और तहलका जैसी पत्रिकाओं में 73 फीसदी निर्णायक पदों पर सवर्णों का क़ब्ज़ा है जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों की हिस्सेदारी 13.6 फीसदी है। इन पत्रिकाओं में भी निर्णायक पदों पर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधित्व पूरी तरह नदारद है।

न्यूज़लॉन्ड्री, फर्स्टपोस्ट, स्क्रॉल, स्वराज्य, द केन, द न्यूज़ मिनट, द प्रिंट, द क्विंट, द वायर अंग्रेज़ी, न्यूज़लॉन्ड्री हिंदी और सत्याग्रह हिंदी जैसी तमाम

वेबसाइटों में 80 फीसदी से ज़्यादा निर्णायक पदों पर सवर्ण बैठे है। यहां भी अन्य पिछड़ा वर्ग की हिस्सेदारी 5 फीसदी से कम है जबकि अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग नदारद हैं।

उपरोक्त तथ्य दो बातें प्रमाणित करते हैं कि पहली यह कि भारतीय समाज में धन-संपदा, नौकरी, शिक्षा एवं राजनीतिक प्रतिनिधित्व सभी मामलों में मनु द्वारा संहितावद्ध वर्ण-जाति आधारित असमानता का श्रेणीक्रम आज पूरी तरह कायम है। यदि ओबीसी या दलितों की 70 वर्षों में बेहतर हुई है, तो उनकी तुलना उच्च जातियों की स्थिति और बेहतर हुई है यानि जो धन-संपदा एवं नौकरियां सृजित हुई हैं, उसके बड़े हिस्से पर पर मुट्ठीभर उच्च जातियों ने नियत्रंण कर लिया है। जिसके चलते वर्ण-जाति आधारित असमानता का श्रेणीक्रम टूटा नहीं, बल्कि कुछ क्षेत्रों में मजबूत हुआ है।

सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में वर्ण-व्यवस्था की उपस्थिति कदम पर कदम दिखती है, इसे प्रमाणित करने के लिए आंकड़े देने की जरूरत नहीं और लेख की शब्द सीमा इसकी इजाजत भी नहीं दे रही है। प्रश्न यह है कि इसे तोड़ा कैसे जाए? इसका सीधा उत्तर है- ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के गठजोड़ पर निर्णायक हमला। डॉ. आंबेडकर ने कामगारों के दो दुश्मन चिन्हित किए थे- ब्राह्मणवाद और पूंजीवादी। भारत में ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद दोनों दो अलग-अलग चीजें नहीं है, दोनों एक-दूसरे में इस तरह घुले-मिले हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति या संगठन ब्राह्मणवाद पर हमला करता है और पूंजीवाद से मेल कायम रखना चाहता है, तो वह चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवाद की रक्षा ही करेगा। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति या संगठन पूंजीवाद पर तो हमला कर रहा है, लेकिन ब्राह्मण से मेल कायम किए हुए है या चुप है, तो वह चाहे-अनचाहे पूंजीवाद की रक्षा कर रहा होता है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्रांतिकारी परिवर्तन ही जाति का समूल विनाश कर सकता है। तो क्या इसका मतलब यह है कि जब यह क्रांतिकारी परिवर्तन न हो, तब तक चुपचाप बैठा रहा जाए, नहीं उससे पहले हमारे सामने दो कार्यभार है- पहला वर्ण-जाति व्यवस्था आधारित हर भेद-भाव का पुरजोर सक्रिय विरोध करना। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में उच्च जातियों के वर्चस्व को चुनौती देना और पिछड़े-दलितों को जनसंख्या के अनुपात में हिस्सेदारी एवं प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष करना। जाति के आर्थिक आधारों के साथ उसके वैचारिक आधारों, मूल्य-मान्यताओं और परंपराओं पर निर्णायक चोट करना।

वर्ण-जाति अतिरिक्त श्रम के दोहन की यानि शोषण-उत्पीड़न की एक बहुत मुकम्मल एवं मजबूत ढ़ाचा रही है और है। इसके वैचारिका-सांस्कृतिक एवं धार्मिक आधारों के साथ इसके भौतिक आधारों को भी तोड़ना होगा, जाति के विनाश के लिए आधार एवं अधिरचना दोनों पर एक साथ निर्णायक हमला जरूरी है, तभी जाति के समूल विनाश का डॉ. आंबेडकर सपना पूरा हो सकता है और नए भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इस पूरे कार्यक्रम को व्यवहारिक शक्ल में देने में एच.एल. दुसाध के डाइवर्सिटी सिद्धांत की अहम भूमिका होगी। यह घोषणा-पत्र उसकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

(लेखक देश के चुनिंदा पत्रकारों में एक हैं।
संपर्क : 9711754959)

नए संस्करण के अवसर पर पर अपनी बात!

वामपंथी सरकारों ने डाइवर्सिटी लागू करने में नहीं ली रूचि

सितम्बर 2005 के बाद इस पुस्तक का एक नया संस्करण पाठकों के बीच है। 2005 में डाइवर्सिटी के मुद्दे पर मैंने क्यों मार्क्सवादियों से संवाद बनाने का प्रयास किया था, पाठक पुस्तक के पहले संस्करण की लेखकीय देखकर भलीभांति समझ जायेंगे। संक्षिप्त में बता दूं कि तब हिंदी पट्टी में जनाधार बढ़ाने की वामपंथियों की बेचैनी; बुद्धदेव भट्टाचार्य के 'नूतन अर्थशास्त्र'; डी. राजा के निजीक्षेत्र में आरक्षण की हिमायत इत्यादि के जरिये भूमंडलीकरण के दौर में वामपंथियों के बदले हुए आर्थिक सोच को देखते हुए ही मैंने डाइवर्सिटी पर संवाद बनाने का प्रयास किया था। किन्तु संवाद बनाने के क्रम में शेष में मैंने यह भी बताया था कि डाइवर्सिटी के जरिये हिंदी पट्टी में जनाधार बढ़ने तथा हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों के जीवन में सुखद बदलाव की व्यापक सम्भावना के बावजूद वामपंथी डाइवर्सिटी लागू करने की दिशा में आगे नहीं बढ़ेंगे। क्योंकि वामदलों का नेतृत्व जन्मजात सुविधाभोगी वर्ग के हाथ में है, जो अपने वर्गीय हित में इसे लागू करने में परहेज करेंगे। मैंने जो आशंका जाहिर की थी वह पूरी तरह से सामने आ चुकी है। वामदल हिंदी पट्टी में अपना जनाधार बढ़ाना तो दूर खुद लाल दुर्ग कहे जाने वाले बंगाल से भी उखड चुके हैं, पर, बद से बदतर होते हालात में भी किसी राज्य की वामपंथी सरकार ने डाइवर्सिटी लागू करने में रूचि नहीं ली।

किन्तु हाल के वर्षो में कई राज्यों की सरकारों ने परम्परागत आरक्षण से आगे बढ़कर अपने-अपने राज्य के कुछ-कुछ विभागों के ठेकों, आउट सोर्सिंग जॉब, सप्लाई इत्यादि कई विभागों में आरक्षण देकर राष्ट्र को चौकाया है। कई राज्यों की सरकारों ने आरक्षण का 50 प्रतिशत का दायरा तोड़ने के साथ निगमों, बोर्डो, सोसाइटियों में वर्ण-व्यवस्था के सर्वहाराओं (एससी/एसटी, ओबीसी) को आरक्षण दिया : धार्मिक न्यासों में वंचित जाति के पुरुषों के साथ महिलाओं को शामिल

करने का निर्णय लिया। साल भर पहले झारखण्ड की हेमत सोरेन सरकार ने 25 करोड़ तक के ठेकों में एसटी, एससी, ओबीसी को प्राथमिकता दिए जाने की घोषणा कर राष्ट्र को चौका दिया था। वहीं जून 2021 के दूसरे सप्ताह में तमिलनाडु की स्टालिन सरकार ने वहां के 36,000 मंदिरों में गैर-ब्राह्मणों और महिलाओं की पुजारी के रूप में नियुक्ति का ऐतिहासिक निर्णय लेकर राष्ट्र को चौका दिया है। मंदिरों के पुजारियों की नियुक्ति के मामले में केरल की वामपंथी सरकार ने सकारात्मक कदम उठाकर अवश्य ही कुछ कलंक धोने का काम किया है। बावजूद इसके कहा जा सकता है कि डाइवर्सिटी लागू करने के मोर्चे पर सबसे निराशाजनक रिकॉर्ड वाम दलों का ही है। किन्तु वामपंथियों की सारी सीमाएं जानने के बावजूद नए सिरे से इस संस्करण के जरिये संवाद स्थापित करने का प्रयास हो रहा है तो इसलिए कि जिस हिन्दू साम्राज्यवाद के शिकंजे से जन्मजात सर्वहाराओं को मुक्त कराने के लिए 2005 में संवाद बनाया था, उसका बहुत ही भयावह रूप से विस्तार हो चुका है और वंचित वर्ग प्रायः विशुद्ध गुलामों की स्थिति में आ चुका है तथा जिस आर्थिक और सामाजिक विषमता के जठर से भूख-कुपोषण-आतंकवाद, विच्छिन्नतावाद का जन्म होता है, वह सारी हदें पार कर चुकी है।

× × × × × ×

हिन्दू साम्राज्यवाद के वजूद को इंकार करते : वामपंथी

जिस हिन्दू साम्राज्यवाद की भयावहता की बात करने जा रहा हूँ, उसके विषय में यह जान लेना जरुरी कि सब समय अमेरिकी साम्राज्यवाद व नवसाम्राज्यवाद का खौफ खड़ा करते रहने वाले भारतीय मार्क्सवादी कभी भी हिन्दू साम्राज्यवाद की बात नहीं करते : उनके हिसाब से हिन्दू साम्राज्यवाद जैसी किसी चीज का वजूद ही नहीं है। लेकिन हिन्दू साम्राज्यवाद का वजूद है, इसे साम्राज्यवाद की परिभाषा के तह में जाकर ही समझा जा सकता है। साम्राज्यवाद को परिभाषित करते हुए एक विद्वान ने कहा है, 'साम्राज्यवाद वह दृष्टिकोण है जिसके अनुसार कोई महत्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति और गौरव को बढ़ाने के लिए अन्य देशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है।' एक अन्य विद्वान के अनुसार साम्राज्यवादी नीति के अंतर्गत एक राष्ट्र-राज्य (Nation state) अपनी सीमाओं के बाहर जाकर दूसरे देशों और राज्यों में हस्तक्षेप करता है।' चार्ल्स ए. बेयर्ड के अनुसार' सभी राष्ट्रों की कमजोर एवं पिछड़े लोगों पर शासन करने की इच्छा व नीति ही साम्राज्यवाद कहलाती है।' साम्राज्यवाद

की उपरोक्त परिभाषाओं में, विशेषकर चार्ल्स बेयर्ड की परिभाषा में सभी राष्ट्रों की जगह सवर्णों को रख दें तो यह स्पष्ट नजर आएगा वैदिक भारत से ही ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों से युक्त आर्य/सवर्ण दलित-आदिवासी-पिछड़ों से युक्त शूद्रातिशुद्रों पर शासन करने; उन्हें गुलाम बनाये रखने की इच्छा व नीति अपनाते रहे हैं। वैदिक भारत से लेकर आजतक सवर्णो का रवैया एक ऐसे महत्वाकांक्षी राष्ट्र-राज्य के जैसा रहा है जो अपनी शक्ति और गौरव को बढाने के लिए दूसरे देशों (शुद्रातिशुद्रों) के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का हर समय प्रयास करते रहता है। यदि उपरोक्त परिभाषाओं का ठीक से अनुसरण किया जाय तो स्पष्ट नजर आयेगा कि हिन्दू प्रधान भारत में सवर्णो की विद्यमानता एक साम्राज्यवादी देश जैसी रही है जो पराधीन बनाये गए मूलनिवासियों के शोषण-दमन में सदा प्रवृत्त रहा है और उनके इस कार्य में सहायक बनी विदेशागत आर्य मनीषियों द्वारा प्रवर्तित वर्ण-व्यवस्था!

वर्ण-व्यवस्था में प्रवाहमान होता रहा : हिन्दू साम्राज्यवाद

आर्य मनीषियों द्वारा प्रवर्तित ब्राह्मण उर्फ़ हिन्दू-धर्म की प्राणाधार वर्ण-व्यवस्था मुख्यतः शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनैतिक-शैक्षिक-धार्मिक) के बंटवारे की व्यवस्था रही, जिसमें पेशों के विचलनशीलता के निषेध के जरिये शक्ति के समस्त स्रोत चिरकाल के लिए विदेशी मूल के ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य के मध्य आरक्षित होकर रह गए। इस व्यवस्था में सुपरिकल्पित रूप से शुद्रातिशुद्रों को शक्ति के समस्त स्रोतों से बहिष्कृत कर निःशुल्क दास के रूप में परिणत कर दिया गया। इस वर्ण-व्यवस्था में ही सदियों से कैसे प्रवाहमान होता रहा हिन्दू साम्राज्यवाद, पुस्तक में यह तथ्य विस्तार से बताया गया है। बहरहाल जिस वर्ण-व्यवस्था के जरिये भारत में चिरकाल के लिए एक आंतरिक साम्राज्यवाद को जन्म दिया गया, उसकी मार्क्सवादियों द्वारा अनदेखी बौद्धिक जगत का एक विराट विस्मय है। विस्मय इसलिए भी है कि कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष की जो बेमिसाल थ्योरी विकसित की, भारत में वह वर्ग संघर्ष भी इस वर्ण-व्यवस्था में ही क्रियाशील रहा। कैसे! इसे जानने के लिए महानतम समाज विज्ञानी कार्ल मार्क्स की मानव जाति के इतिहास की व्याख्या का सिंहावलोकन कर लेना पड़ेगा।

वर्ण-व्यवस्था में ही क्रियाशील रहा : भारत में वर्ग-संघर्ष

मार्क्स ने कहा है अब तक के विद्यमान समाजों का लिखित इतिहास वर्ग-संघर्ष

Continue Your Reading Journey

This preview has ended. Access the complete library and support our mission.

Join Our Inclusive Reading Community

✓ We champion diverse voices and perspectives
✓ Your support helps amplify underrepresented authors
✓ We provide free access to educational institutions
✓ Building bridges through shared stories
✓ Creating space for all narratives to be heard

Support Our Mission

Your donation enables us to:

- Curate diverse book collections
- Support authors from marginalized communities
- Provide free resources to educators
- Maintain our accessible digital library

Visit: www.diversitymission.in

Sign the diversity pledge • Make a donation • Download full library